Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

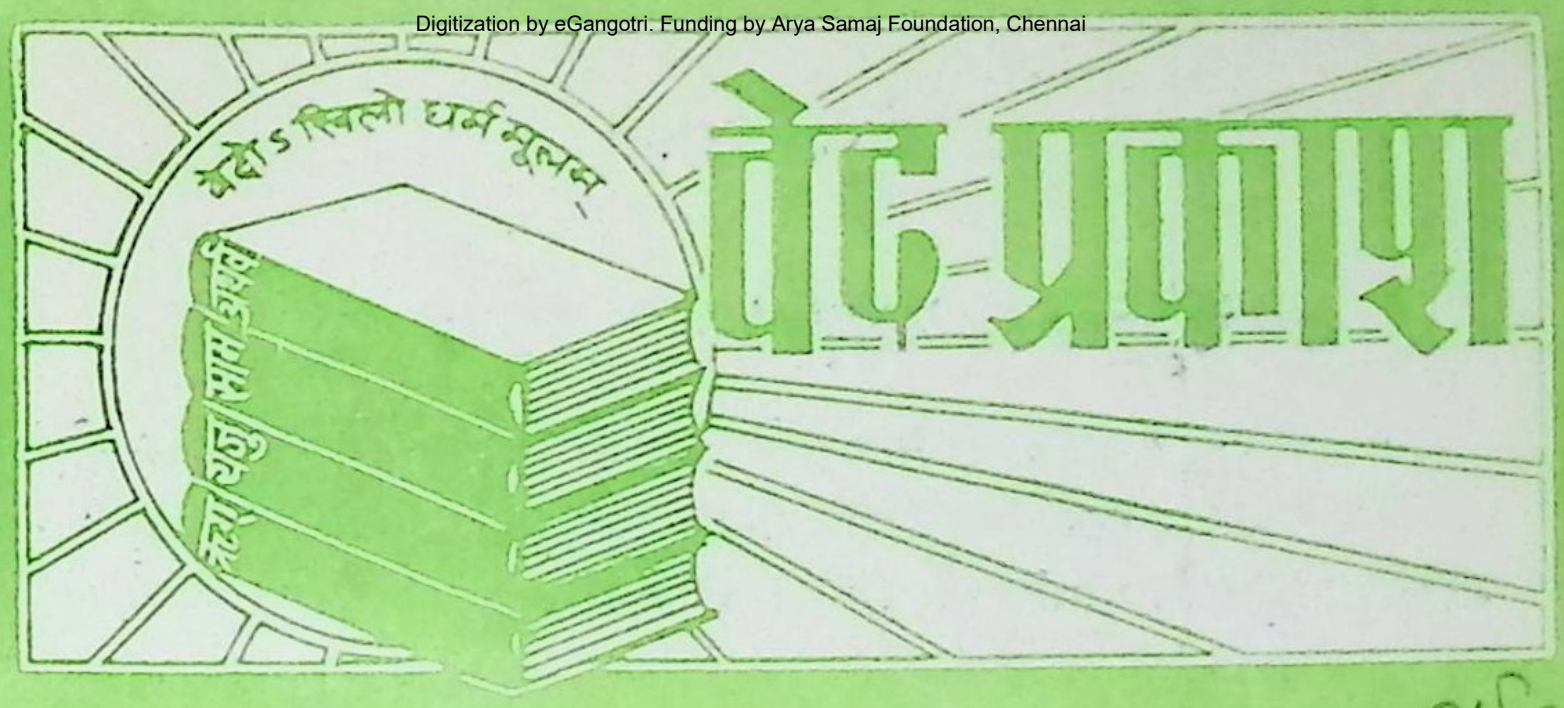

2/Ed

शुभ कर्म करने की प्रतिज्ञा

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

—ऋ० १।८९।८

(**कर्णेभिः**) कानों से (**भद्रं शृणुयाम**) कल्याणमय उपदेश ही सुनें, (**अक्षभिः**) आंखों से (**भद्रं पश्येम**) कल्याणकारक दृश्य ही देखें । हे (**यजत्राः देवाः**) याजक विद्वान् लोगो ! (**स्थिरैः अङ्गैः**) स्थिर अंगों से युक्त (**तनूभिः**) शरीर से (**तुष्टुवांसः**) ईश्वर की प्रशंसा करते हुए (**देवहितम् आयुः**) देवों के हित करने के लिए अपनी आयु (**व्यशेम**) प्राप्त करें ।

शरीर के सम्पूर्ण अवयवों से श्रेष्ठों की सेवा और उनका सत्कार करते हुए तथा सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्तव्यों को पूर्ण करते हुए, हम पूर्ण आयु प्राप्त करें । इस मन्त्र में यद्यपि कान और आंखों का ही उल्लेख है, तथापि सब अन्य अवयवों के विषय में इसी प्रकार निश्चय करना चाहिए। अर्थात् अपने हर एक अवयव से शुभ कर्म करने की प्रतिज्ञा इस समय करनी चाहिए । और दक्षता के साथ व्यवहार करके उक्त प्रतिज्ञा की पूर्णता करनी चाहिए । अपने शरीर के हर एक अवयव से इस प्रकार शुद्ध कर्म करने की दक्षता जो बनायेंगे; वे ही उन्नत हो सकते हैं ।

मनुष्य शरीर की कृतकृत्यता उक्त प्रकार कर्म करने से ही हो सकती है । प्रत्येक अवयव को शुभ कर्म में प्रवृत्त करने से उन्नति और अशुभ कर्म में प्रवृत्त करने से अवनति होती है, यह नियम ध्यान में रखने से मनुष्य की सदा उन्नति ही होती रहेगी ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बोध-कथा

अहङ्कार जीतना शेष है !

संवत् १९२३ विक्रमी में स्वामी दयानन्द जी सरस्वती अजमेर पधारे । इस प्रवास के दौरान एक दिन सांवले रंग के दो तपस्वी युवक नागपर्वत के जंगल से स्वामी जी के दर्शन के लिए आए । स्वामी जी ने उन्हें बड़े आदर-सत्कार से बिठलाया । दोनों तपस्वी संस्कृत को छोड़ कर दूसरी किसी भाषा में बातचीत नहीं करते थे । कुछ समय योग सम्बन्धी चर्चा होती रही । चलते समय वे दोनों स्वामी जी से कहने लगे–"स्वामी जी, हम तो अब तृप्त हैं, पूर्ण शान्त हैं ।" स्वामी जी ने कुछ हंसकर कहा– "नहीं, महात्मा जी, अभी अंहकार जीतना शेष है ।" दोनों ने कहा– "हम ने अहंकार सर्वथा जीत लिया है ।"

अभी भीतर से निकल कर तपस्वी बाहर गए ही थे कि स्वामी जी के संकेत से एक ब्रह्मचारी ने उनसे कलह करना प्रारम्भ कर दिया। वह झगड़ा इतना बढ़ा कि दोनों तपस्वी और ब्रह्मचारी आपस में गुत्थमगुत्था हो गए और एक दूसरे को पटकते हुए ऊपर-नीचे होने लगे । कलह की आवाज सुन कर भीतर बैठे हुए सब मनुष्य स्वामी जी सहित बाहर आ गए और उन्हें पृथक्-पृथक् कर दिया ।

उन तपस्वियों को भीतर ले जाकर स्वामी जी महाराज ने समझाया कि आप हमारा कहना नहीं मानते, परन्तु अब परीक्षा से सिद्ध हो गया कि आप में अहङ्कार की कला अभी मन्द नहीं हुई । मुनियों को और विशेषत: अभ्यासियों को अभिमान कदापि नहीं करना चाहिए । क्योंकि–

कलश पूर्ण छलके नहीं घोषण ऊना करे ।
गर्व करें न ज्ञानी जन अज्ञानी दम्भ करे ॥
गरजे बहुत बरसे नहीं ओछे में अहंकार ।
बजे घना थोथा चना कह गए ज्ञानी सार ॥

महाराज से क्षमा-याचना कर दोनों तपस्वी 'नमो नारायण' कह कर चले गए । इसके बाद दोनों तपस्वी दो बार स्वामी जी के दर्शनों के लिए आए ।

–नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४५ अंक ७ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये फरवरी १९९६

सम्पा॰ अजयकुमार आ॰ सम्पादक : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

जिज्ञासु के लिए उपनिषदों की सीख : १०

'बृहदारण्यक' उपनिषद् : वन्यजीवन में सच्चे तत्त्वज्ञान की खोज

–नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

'बृहदारण्यक' शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है–बृहत् और आरण्यक, बृहत् का अर्थ है बड़ा । इस उपनिषत् के साथ **बृहत्** शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया, क्योंकि आकार में यह उपनिषद् दूसरी सब उपनिषदों से बड़ी है । आरण्यक इस उपनिषत् को इसलिए कहा गया, क्योंकि **आरण्यक** शब्द का अर्थ है वन या जंगल की । इस उपनिषत् का निर्माण और उपदेश–अरण्य–जंगल=वन में किया गया। वैदिक विचारधारा का रहस्य समझने के लिए उपनिषदों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है । गूढ़ वैदिक रहस्यों की पहेलियां इन उपनिषदों के माध्यम से सुलझाई गई हैं । इस उपनिषत् के पहले और दूसरे ब्राह्मण द्वारा वैदिक ऋषियों ने स्पष्ट किया है– अश्वमेध यज्ञ का अर्थ सांसारिक दृष्टि से अग्नि में किसी पशु की आहुति देना नहीं है । प्रत्युत यह एक विशुद्ध आध्यात्मिक प्रक्रिया है । ऋषि का कथन है । एक विराट् अश्वमेध यज्ञ प्रचलित है । सृष्टि में सम्पन्न हो रहे विराट् अश्वमेध में उषा अश्व का सिर है, सूर्य अश्व की आंख है, वायु अश्व का प्राण है, द्यु–लोक अश्व की पीठ है, अन्तरिक्ष लोक अश्व का उदर या पेट है, पृथिवी–लोक अश्व के पैर–पाद दिशाएं अश्व के पार्श्व, अवान्तर दिशाएं अश्व की पसलियां, ऋतुएं अश्व के अंग, बादल अश्व का मांस, नदियां अश्व की आंतें, ओषधियां और वनस्पतियां अश्व

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के लोमों, बादलों का गर्जन अश्व के हिनहिनाने के समकक्ष कहा गया है । कर्मकाण्डी लोग अश्व का हनन कर यज्ञ में जो आहुति देते हैं, वह छोड़ने और त्यागने के योग्य है । इस सृष्टि में ही एक विराट् अश्वमेध की कल्पना करनी चाहिए । उसमें हो रहा रात-दिन प्रचलित रहने वाला ही सच्चा अश्वमेध यज्ञ है ।

स्वार्थहीन कर्म की महत्ता

इसी उपनिषत् के पहले अध्याय के तीसरे ब्राह्मण के माध्यम से देवों और असुरों की कथा प्रस्तुत कर निःस्वार्थ कर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है । प्रजापति की दो तरह की सन्तानें थीं—देव और असुर। **द्वया ह प्राजापत्याः देवा च असुराः च** । उन में देवता गिनती में कम थे और असुर गिनती में अधिक थे । दोनों ही ब्रह्माण्ड के लोकों पर अपना प्रभुत्व प्रदर्शित करने के लिए एक दूसरे से होड़ करने लगे । **ते एषु लोकेषु अस्पर्धन्त** । देवों ने कल्पना की, संख्या में तो हम असुरों से नहीं बढ़ सकते, इसलिए यज्ञ में ओङ्कार या उद्गीथ की उपासना से ही आगे बढ़ जाएं । **ते ह देवा ऊचुः, हन्त असुरान् यज्ञे उद्गीथेन अत्ययाम इति** ।

देवों ने सब से पहले वाणी को उद्गाता बनने की प्रेरणा दी। वाणी उद्गाता बन उद्गीथ द्वारा देवों के लिए गान करने लगी । एक ओर अपने कर्मों का फल उसने वचन द्वारा देवों और इन्द्रियों को भोगने के लिए कहा, साथ उसने यह आकांक्षा भी प्रकट की कि उद्गीथ-गान का शुभ फल उसे मिल जाए । (**यत् कल्याणं वदति तद् आत्मने**) जब असुरों को ज्ञात हुआ कि वाणी में स्वार्थभाव आ गया है तो, तब उन्होंने स्वार्थरूपी पाप से वाणी को बींध दिया । वाणी सत्य बोलने के साथ अपने स्वार्थ के लिए असत्य भी बोलती रही, इसी स्वार्थ के कारण वाणी के उद्गीथ-गान के समय असुरों के मुकाबले में देव सफल नहीं हुए । उसके बाद देवों ने नासिका के श्वास को देवों का उद्गीथ बनने के लिए कहा । नासिका पिण्ड और ब्रह्माण्ड में उद्गाता बन देवों के लिए उद्गीथ गाने लगी । उसने यह तो कहा कि मेरे उद्गीथ की उपासना का सब लाभ देवों-इन्द्रियों को मिले, परन्तु इसके साथ यह आकांक्षा भी की कि उद्गीथ गान का यदि कोई सुफल हो तो वह उसे मिल जाए । (**यत् कल्याणं जिघ्रति तद् आत्मने**।) जब असुरों को अनुभूति हुई कि नासिका के श्वास में स्वार्थ की भावना परिपूर्ण है, तब उन्होंने स्वार्थ रूपी पाप से श्वास को बींध दिया । जिससे नाक सुगन्ध के साथ दुर्गन्ध भी सूंघे । उद्गीथ गान के समय नासिका ने स्वार्थ से अभिभूत पाप किया फलतः असुरों से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संघर्ष में देव सफल नहीं हुए ।

उसके बाद देवों ने चक्षु या आंख को उद्गाता बनाया । चक्षु ने भी उद्गीथ गान के समय उपासना का फल देवों-इन्द्रियों को भोगने की घोषणा की परन्तु साथ ही यह आकांक्षा भी की कि उद्गीथ-गान का जो शुभ फल हो वह उसे मिले । (**यत् कल्याणं पश्यति तद् आत्मने।**) जब असुरों को चक्षु के हृदय में छिपे स्वार्थ भाव की अनुभूति हुई तब उन्होंने स्वार्थ रूपी पाप से चक्षु को बींध दिया । फलतः आंख अच्छा तथा बुरा दोनों देखने लगी । चक्षु के पाप कर्म के कारण असुरों से संघर्ष में देव सफल न हो सके । उसके बाद देवों ने श्रोत्र-कान को उद्गाता बनने के लिए कहा । ऊपर से उसने कहा—उसके उद्गीथ की उपासना का फल देवों या इन्द्रियों को मिले, पर साथ ही यह आकांक्षा भी की कि उद्गीथ गान का यदि कोई शुभ फल हो तो वह उसे मिले। (**यत् कल्याणं शृणोति तद् आत्मने** ।) जब असुरों को अनुभूति हुई कि श्रोत्र या कान में स्वार्थ भर गया है । तब उन्होंने स्वार्थ रूपी पाप से कान को बींध दिया । फलतः कान या श्रोत्र अच्छी तथा बुरी बात दोनों सुनने लगा । श्रोत्र ने उद्गीथ-गान के समय जो पाप वृत्ति शुरू की उससे असुरों के संघर्ष में देव सफल नहीं हो सके।

इसके बाद देवों ने मन से उद्गाता बनने का अनुरोध किया। उस ने ऊपर से तो कहा कि मेरे कर्मों का सब फल देव या इन्द्रियां भोगें, परन्तु यह आकांक्षा भी प्रकट की कि जो उद्गीथ गान का अच्छा फल हो, वह उसे मिले । असुरों ने मन की यह स्वार्थ भावना जान कर उसे पाप से बींध दिया । फलतः मन अच्छे संकल्पों के साथ बुरे संकल्प भी करने लगा । मन के पाप से अभिभूत होने के कारण असुरों के साथ संघर्ष में देवता सफल नहीं हो सके । चारों के बाद देवों ने प्राण से अनुरोध किया कि वह ब्रह्माण्ड और पिण्ड में उद्गाता बन कर देवों के लिए गाने लगे । असुरों को अनुभूति हुई कि प्राण को उद्गाता बना कर देव लोग हमें पराजित करना चाहते हैं । **अनेन वै नः उद्गात्रा अत्येष्यन्ति इति** । फलतः उन्होंने आकस्मिक आक्रमण कर प्राण को स्वार्थरूपी से पाप से निशाना बनाना चाहा । **तम् अभिद्रुत्य पाप्मना अविध्यन्** । पर जिस प्रकार मिट्टी का ढेला पाषाण या पत्थर से टकरा कर चूर-चूर हो जाता है, उसी प्रकार इस बार के संघर्ष में असुर खण्ड-खण्ड हो नष्ट-भ्रष्ट हो गए, इस अन्तिम संघर्ष में देव जीत गए और असुर पराजित हो गए ।

देवों और असुरों के इस संघर्ष से उपनिषत्कार ने सीख दी की जो स्वार्थहीन होकर कर्म करता है, वह अपने स्वरूप में चमक उठता है । और द्वेष-शत्रुता करने वाला पक्ष पराजित हो जाता है ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ततः देवाः अभवन् परा असुराः । यः एवं वेद भवति आत्मना, द्विषन् भ्रातृत्वः पराभवति । जब तक वाणी, नासिका, चक्षु, श्रोत्र, मन ये सब आसक्ति की भावना से कार्यरत थे । परिणाम स्वरूप असुरों से संघर्ष में पराजित होते रहे, परन्तु जब सब तरह की आसक्ति से शून्य होकर प्राण रहा और वह कहीं अन्यत्र नहीं, वह मुख के आभ्यन्तर विद्यमान है । फलतः मृत्यु पराजय उससे दूर भाग गई । **(अयम् आस्ये अन्तः इति, सा वै एषा देवता दूः नाम दूरम् ह वै अस्मात् मृत्युः भवति यः एवम् वेद ।**

उपनिषत् की यह कहानी सीख देती है । स्वार्थहीन, आसक्ति से शून्य होकर जीवन में लक्ष्य प्राप्ति सम्भव है । वाणी, आंख, कान मन का प्रत्येक कार्य यदि उसमें स्वार्थ या आसक्ति हो तो स्वार्थ उसे पाप से दूषित कर देता है । ओङ्कार का जाप करने वाली वाणी, उसका श्रवण करने वाला श्रोत्र परन्तु आन्तरिक स्वार्थ से वशीभूत होने पर असत्य बोलने-व्यवहार करने में संकोच नहीं करेंगे । इन्द्रियां अच्छाई इसलिए करती हैं कि देवों ने उन्हें ओङ्कार का अवलम्ब दिया और वे बुरा इसलिए करती हैं कि असुरों ने उनमें स्वार्थ की भावना भर दी । स्वार्थ के कारण पाप उन पर छा गया । वाणी, आंख, कान और मन अच्छा बुरा दोनों मार्ग अपनाते हैं परन्तु एकाकी प्राण ऐसा है जो स्वार्थहीन होकर कार्य करता है । यह अनासक्त, स्वार्थहीन होकर कार्य करना इस उपनिषत् का अमर सन्देश है ।

सृष्टि-व्यवस्था में आत्म-तत्त्व

उल्लेखनीय है कि बृहदारण्यक उपनिषत् के इस प्रकरण में सृष्टि उत्पत्ति का विवरण पारसियों के ग्रन्थ जिन्दावस्था और ईसाइयों के ग्रन्थ बाइबिल के विवरणों से मेल खाता है । 'अम्हि' और 'अम्हि यदम्हि' ये दो ईश्वर के नाम जिन्दावस्ता में दिए गए हैं । ये दोनों शब्द अस्मि के अपभ्रंश हैं । इसी प्रकार बाइबिल के एक्तोडस (निष्क्रमण) शीर्षक भाग में परमेश्वर ने 'आई एम दैट आई एम' अपने नाम कहे हैं । इसी बृहदारण्यक उपनिषत् के पहले अध्याय के ४९वें ब्राह्मण में दिए विवरण में उल्लेख है–'सृष्टि के आरम्भ में एकाकी आत्मा था । उसे चारों ओर देखने पर अपने अतिरिक्त कुछ न दिखाई दिया । फलतः वह बोला–**अहम् अस्मि** –मैं हूं । **'अहम् अस्मि'** बोलने से वह **'अहम्'** कहलाया । **'अहम् नामा अभवत् ।' योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहमस्मि ।'** यजुर्वेद के ४० वें अध्याय का १६वां मन्त्रांश पारसियों के 'अम्हि यदम्हि' और ईसाइयों के 'आई एम दैट आई एम' से मिलता-जुलता है । उपनिषद् में आत्मा के अहम् नाम को अर्थ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का ख्याल किए बिना अपना लिया दीखता है, फलतः अहम् (मैं) को भगवान् के नाम 'मैं हूं' 'आई एम अम्हि' अस्मि के रूप में स्वीकार कर लिया गया ।

बृहदारण्यक उपनिषत् की तीसरी पद्यावली में उल्लेख है—सृष्टि के प्रारम्भ में आत्मा पुरुष रूप था, एकाकी होने के कारण वह रमण करने में असमर्थ था । (**आत्मा एव इदम् अग्रे आसीत् स वै न रमे**) उसने अपने साथ दूसरे की भी आकांक्षा की **स द्वितीयम् ऐच्छत्** । प्रारम्भ में वह एकाकी ही 'नर-नारी' से समन्वित था । **यथा स्त्री-पुमांसौ संपरिष्वक्तौ** । फलतः उसने यह काया दो खण्डों में विभक्त कर ली । **स इमम् एव आत्मानं द्वेधा अपातयत्** । इस प्रकार वह एक इकाई से दो भागों में बंट गंए तो वे पति-पत्नी के रूप में आ गए । **ततः पतिः च पत्नी च अभवताम्** । इसलिए वह अन्न के अर्धांश के समान हैं । '**तस्माद् इदम् अर्धबृगलम् इव स्वः ।**' (१।४।३)

बाइबिल के जेनेसिस (उत्पत्ति-ग्रन्थ) शीर्षक विवरण में लिखा गया है—प्रभु ने उस की रचना की । प्रभु ने पुरुष की पसली निकाल कर एक नारी का निर्माण किया । विवरण से यही प्रतीत होता है । सृष्टि-रचना से पूर्व नर-नारी संयुक्त रूप में एक संयुक्त आकृति में थे । सृष्टि के प्रारम्भ में यह प्राणि-जीवन की शुरुआत एक कोष्ठक जीवन तत्त्व यूनिसेल्युलर लाइफ के रूप में था, फिर बहुकोष्ठक जीवन मल्टी सेल्युलर लाइफ का विकास हुआ । उपनिषत् के अगले प्रकरण में विवरण है । सारे प्राणी-जगत् में नर-तत्त्व, नारी-तत्त्व, गाय-बैल, घोड़ी-घोड़ा, गधी-गधा, बकरी-बकरा, भेड़-भेड़ा, चींटी तक ये जोड़े या मिथुन प्रकट हुए । **यत् इदं किंच मिथुनम् आ पिपीलिकाभ्यः तत् सर्वम् असृजत्** । (१।४।४)

उपनिषत्कार की प्रस्तुति है नाम और रूप से पृथक् दिखाई देने वाले उनके नाम रूप में न फंस कर यथार्थ सत्ता के रूप में आत्म-तत्त्व को ही स्वीकार करना चाहिए । (**नामरूपाभ्याम् एव व्याक्रियते असौ-स एष इह प्रविष्टः ।**) वस्तुतः यथार्थ तत्त्व आत्म-सत्ता ही प्रत्येक तत्त्व से अधिक प्रिय है, वह पुत्र से अधिक प्रिय है, धन-सम्पदा से अधिक प्रिय है, वही सर्वाधिक प्रिय तत्त्व होता है । **तत् एतत् प्रेयः पुत्रात्, प्रेयः वित्तात् प्रेयः अन्यस्मात् सर्वस्मात्।** यह आत्मतत्त्व ही सब से अन्तरंग होता है । **अन्तरतरं यद् अयम् आत्मा।** उस आत्मतत्त्व की अपेक्षा यदि कोई पुत्र-परिवार, धन-सम्पदा, अन्न भण्डार को अधिक प्रिय समझता हो व्यक्ति की यह धारणा ही उसे प्रभु तक पहुंचने में व्यवधान डालती है । पर जो व्यक्ति आत्म तत्त्व को प्रिय समझता है, वह सामर्थ्यवान् होकर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रभु से तादात्म्य स्थापित कर सकता है । (**स यः अन्यम् आत्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात् प्रियं सेत्स्यति इति, ईश्वरः ह तथा एव स्यात् आत्मानं प्रियम् उपासीत ।** (१।४।८)

आत्मतत्त्व की चर्चा के बाद ऋषि ने बतलाया सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्म एकाकी था, वह जानता था कि मैं ब्रह्म हूं । (**ब्रह्म वै इदम् अग्रे आसीत् तद् आत्मानम् अवेत् अहं ब्रह्म अस्मि** । और उसी से सब कुछ उत्पन्न हुआ । (**तस्मात् तत् सर्वम् अभवत्** । जैसे आत्मतत्त्व सब प्राणियों में ओत-प्रोत है । उसी प्रकार ब्रह्म तत्त्व से ही उस के इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि सब तत्त्वों का विकास हुआ ।

सृष्टि के जनक ब्रह्म ने मेधा और तप से सात अन्न उत्पन्न किए । (**यत् सप्त अन्नानि मेधया तपसा अजनयत्** ।) पिता उन में से एक सामान्य अन्न है, उसकी सामान्य स्थिति यही है कि सब उसका आहार करते हैं । (**एकम् अस्य साधारणम् अन्नं, यत् इदम् अद्यते** ।) इस अन्न की एकाकी उपासना कर उसे एकाकी खाने वाला पाप से नहीं बच सकता । क्योंकि यह सामान्य अन्न सब के सांझे उपयोग के लिए है । (**न स पाप्मनः व्यावर्तते मिश्रं हि एतत्** ।)

एक बार एक बालाकि अभिमानी ब्राह्मण गार्ग्य काशिराज अजातशत्रु की सभा में पहुंच कर बोला--मैं तुम्हें ब्रह्म की शिक्षा दूंगा। अजातशत्रु ने कहा—यदि तुम वस्तुतः शिक्षा दोगे तो मैं सहस्र गौएं दूंगा। उस बालाकि अभिमानी ब्राह्मण गार्ग्य ने कहा— मैं आदित्य सूर्य को ब्रह्म समझ कर उसकी उपासना करता हूं । अजातशत्रु ने कहा-यह मत कहो । संसार सब से उच्च स्थिति में अवस्थित होकर सब पदार्थों का राजा है, इसी स्थिति में उसकी उपासना करता हूं । फिर गार्ग्य ने चन्द्र में अवस्थित पुरुष को ब्रह्म समझ कर उपासना करने की बात कही । अजातशत्रु ने कहा कि छिटकती शुभ्र चांदनी में श्वेत वस्त्र धारण करने वाले सोम राजा की मैं उपासना करता हूं, इस रूप में उसकी उपासना से घर में सोम-रस का प्रवाह होता है । गार्ग्य ने फिर विद्युत् आकाश, वायु, जल आदि में ब्रह्म पुरुष होने की बात कही परन्तु अजातशत्रु ने विद्युत् में अचेतन तेजस्वी है, आकाश गति शून्य अप्रवर्त्ती है, वायु बिना बाधा के चलने वाली ऐश्वर्यशालिनी सेना के समकक्ष है, उन्होंने कहा—वह इन तत्त्वों की इन्हीं स्वरूप में आराधना करते हैं ।

इस पर गार्ग्य ने दर्पण में दीखने वाले पुरुष, नाद में प्रतीत होने वाले पुरुप को ब्रह्म मानता हूं । अजातशत्रु ने कहा—दर्पण में व्यक्ति अपना प्रतिविम्ब देखता है, नाद में अपने ही प्राणों की ध्वनि सुनाई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

देती है । इस पर गार्ग्य ने कहा–'अपने शरीर में ही आत्म पुरुष को ब्रह्म मान कर उसकी उपासना करता हूं ।' (**य एव आत्मनि पुरुषः एतम् एव अहम् ब्रह्म उपासे इति ।**) अजातशत्रु ने कहा– ऐसा संवाद करना ठीक नहीं है । यह शरीरगत आत्मा तो स्वयम् आत्मा वाला है, यह आत्मा दूसरे आत्मा की अपेक्षा करता है, यह आत्मा ब्रह्म नहीं हो सकता । शरीरगत आत्मा की इसी रूप में उपासना करनी चाहिए। इस रूप में उपासना करने से वह आत्मा से सम्पन्न हो जाता है ।

अजातशत्रु गार्ग्य का हाथ पकड़ कर उसे एक सोते हुए व्यक्ति के पास ले गया । आवाज लगाने पर भी वह नहीं जागा, फिर हाथ हिलाने से जागा । **बोधयाञ्चकार, उत्तस्थौ ।** (२.१.१५) अजातशत्रु ने गार्ग्य को समझाया–यह व्यक्ति सो रहा था, यह विज्ञान स्वरूप पुरुष सोते समय कहां चला गया था, उसे हिलाने पर वह कहां से लौट आया । गार्ग्य कुछ उत्तर नहीं दे सका । तब अजातशत्रु ने समझाया। सोते समय भी यह पुरुष विज्ञानमय था, सुप्तावस्था में वह अपने सम्पूर्ण ज्ञान को समेट कर हृदयाकाश में केन्द्रित हो गया । वह सोता हुआ अपने स्वरूप में पहुंचा होता है । स्वप्न लोक में कभी यह राजा बनता है तो कभी फकीर, कभी ऊंची स्थिति पाता है तो कभी नीची । परन्तु स्वप्नावस्था के बाद वह सुषुप्तावस्था में पहुंच जाता है । जब यह सुषुप्त होता है । तब उसे कुछ ज्ञान नहीं होता । तब वह हृदय से निकली अनेक नाड़ियों में पुरीतत् नाड़ी में पहुंच कर आनन्द की पराकाष्ठा को पा लेता है । (**अथ यदा सुषुप्तः भवति, यदा न कस्यचन वेद, पुरीतति शेते ।**) तब आनन्द घन परमात्मा ब्रह्म के समीप पहुंचने से उसे ब्रह्म की सच्ची झांकी मिलती है ।

ब्रह्माण्ड के भौतिक पदार्थ देखकर गार्ग्य उन्हें ही ब्रह्म कहता था, पिण्ड की इन्द्रियों को ही ब्रह्मस्वरूप समझता था । अजातशत्रु ने उसकी भ्रान्ति दूर कर सच्चे आनन्दघन प्रभु की वह झांकी प्रदर्शित की । जो सुषुप्तावस्था में सभी प्राप्त कर सकते हैं ।

धन से सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं

ऋषि याज्ञवल्क्य ने संन्यास लेने का संकल्प किया । ऋषि की मैत्रेयी और कात्यायनी दो पत्नियां थीं । मैत्रेयी को बुलाकर ऋषि ने कहा–मेरी इच्छा है कि मैं संन्यास ले लूं । इसलिए अपनी सारी सम्पत्ति तुम दोनों में बांटना चाहता हूं । "कात्यायनी सीधी सरल थी, वह कुछ न बोली, परन्तु विचारशीला मैत्रेयी ने कहा–हे स्वामिन्, यदि पृथिवी की सारी सम्पदा मुझे मिल जाए, तो क्या उससे मुझे सच्चा सुख मिलेगा, या उससे मेरी मुक्ति सम्भव है । (**यन्नु म इयं भगोः**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेनामृता स्यामिति ।)

ऋषि याज्ञवल्क्य ने स्वीकार किया--मैत्रेयी, धन-सम्पदा से सच्चा सुख नहीं मिलेगा । दूसरे धनिकों के समान उससे भोग भरा जीवन व्यतीत किया जा सकता है, परन्तु उससे सच्ची मुक्ति प्राप्त नहीं होगी । "स्वामिन्, फिर ऐसी सम्पत्ति लेकर मैं क्या करूंगी, जिससे सच्चा सुख उपलब्ध नहीं हो सकता, जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति नहीं मिल सकती । ऐसी धन-सम्पदा का मैं क्या करूंगी । मुझे अमरत्व पाने का सच्चा रास्ता बतलाइए ।" मैत्रेयी के उत्तर से याज्ञवल्क्य प्रसन्न हुए । बोले--"आओ, बैठो तुम्हें अमरत्व का मार्ग बतलाता हूं । मैं जो कुछ कहता हूं । गम्भीरता से उस पर चिन्तन करना ।"

फिर याज्ञवल्क्य ऋषि ने सच्चे सुख का मार्ग बतलाते हुए कहा--"पति हो, धर्मपत्नी भी हो, सुपुत्र भी हों, सभी दूसरों के लिए नहीं, प्रत्युत अपने लिए ही प्यार करते हैं, यह मेरे पति हैं, यह मेरी धर्मपत्नी हैं, यह मेरे सुपुत्र हैं । ये सब मेरे हमारे अपने हैं, इसलिए उन्हें प्यार करते हैं । यह अपनेपन निजत्व की भावना ही प्रेम का आधार है ।

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति । आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति ॥ न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति । आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ॥ न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रियाः भवन्ति । आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति ॥

ऋषि ने बतलाया--"धन-सम्पदा, संसार का प्रत्येक प्राणी या कोई भी पदार्थ मानव उन्हें उसी स्थिति में चाहता है, जब उसका उनसे सम्बन्ध होता है, जब उसके साथ आत्मा का नाता हो, इसलिए अपेक्षा इस बात की है कि हम इस आत्मा को समझें, जानें ।

हे मैत्रेयी ! इस आत्मा को ही देखना चाहिए । उसी को सुनना चाहिए । उसी पर चिन्तन करना चाहिए । उसे जान लेने से सब कुछ जाना जा सकता है ।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ॥

जैसे कोई व्यक्ति शंख बजाए तो शंख-ध्वनि को नहीं पकड़ा जा सकता, परन्तु यदि कोई शंख या शंखवादक को पकड़े तो शंख-ध्वनि भी पकड़ में आ जाती है ।

स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद् ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ।

इसलिए आत्मा की उपलब्धि अपेक्षित है । सब प्राणियों में सर्वत्र एक आत्मा को समझना चाहिए । सम्पूर्ण विवाद उसी समय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तक है, दो होने अथवा द्वैत की भावना मिटी तो सब विवाद समाप्त हो जाता है । जब सब कुछ एक आत्मा को ही स्वीकार कर लिया गया, तब कौन किसे सूंघेगा, कौन किसके दर्शन करेगा, कौन किसका श्रवण करेगा, कौन किसे बोलेगा, कौन किसका चिन्तन करेगा, कौन किस का ख्याल करेगा । सर्वत्र चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा जाएगा। वस्तुतः यही है वास्तविक सुख का असली माध्यम ।

यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कं पश्येत्। केन कं शृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कं मन्वीत तत्केन कं विजानीयात् ॥

—१.२.३ बृहदारण्यक उपनिषद् २।४।२,५,८,१४

सृष्टि का सम्पूर्ण स्रोत आत्मा है, इसलिए बाहरी संसार के पीछे भागने के स्थान पर आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना ही सब कुछ जान लेने के तुल्य है । जिस प्रकार नमक का टुकड़ा या उसके अंश पानी में विलीन हो जाते हैं । उसे पानी में खोजा नहीं जा सकता, उसी प्रकार विज्ञान-घन-आत्मा सृष्टि में सर्वत्र विद्यमान है । अन्त में ऋषि याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को मधु विद्या की शिक्षा दी । मधु विद्या का तात्पर्य यही है कि जिस प्रकार मधु के समकक्ष पृथिवी, जल, आकाश आदि हमें प्रिय हैं, उसी प्रकार साधक के लिए आत्मा और ब्रह्म भी प्रिय होने चाहिएं ।

ब्रह्मा से चली उपनिषद् में उल्लिखित गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा उक्त ब्रह्म विद्या का ज्ञान उत्तरोत्तर निरन्तर दिया गया है ।

सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता कौन ?

प्राचीन युग में एक बार विदेह के राजा जनक ने बहुदक्षिण नाम का एक बड़ा यज्ञ किया । इस अवसर पर देश भर के अनेक विद्वान् तथा याज्ञिक एकत्र हुए । ऐसे समय राजा जनक की जिज्ञासा हुई कि एकत्र हुई विद्वन्मण्डली में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् कौन है ? उन्होंने ऐसे विद्वान् को पुरस्कृत करने के लिए दक्षिणा स्वरूप एक सहस्र गौएं मंगवाईं और प्रत्येक गाय के सींग में दस-दस तोले सोने की मालाएं डलवा दीं । राजा जनक ने उस महायज्ञ में एकत्र विद्वानों को सम्बोधित करते हुए कहा—"ब्राह्मणो, आप लोगों में जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी हो, वह इन गौओं को अपने घर ले जा सकता है ।"

उस यज्ञ-मण्डप में ऋषि याज्ञवल्क्य थे । उन्होंने अपने एक शिष्य सामश्रवा से कहा—'वत्स, इन गौओं को हांक कर आश्रम में ले जाओ ।' जनक के यज्ञ में राजपुरोहित अश्वल उपस्थित थे । उन्होंने याज्ञवल्क्य से पूछा—"यदि आप अपने को सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता समझते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं तो पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिए ।'' पण्डित अश्वल का पहला प्रश्न था ।–''यज्ञ का लक्ष्य यजमान को जन्म-मरण के चक्र से उन्मुक्त कर मुक्ति दिलाना है । जब मृत्यु सभी को शिकार बना रही है । तब यजमान मृत्यु से कैसे बच सकता है ? उसे फिर मोक्ष कैसे मिलेगा?'' ऋषि याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया–''मृत्यु से छुटकारे का तात्पर्य यह नहीं है कि यजमान की मौत नहीं होती । अग्नि भौतिक जगत् में जो कार्य करती है, व्यक्ति के संसार में वाणी वही कार्य करती है । जिस प्रकार अग्नि में सब विकार, मल भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार यजमान की वाणी का तेजस्वी हो जाना ही यजमान द्वारा मृत्यु को जीत लेना है। समष्टि जगत् की अग्नि और व्यष्टि जगत् की वाणी का समरस होना ही मृत्यु को जीत लेना है । इसे ही मोक्ष, मुक्ति या अति मुक्त कहा जा सकता है ।''

अश्वल की दूसरी जिज्ञासा थी–''यज्ञ का लक्ष्य यजमान को दिन रात के चक्र-बन्धन से मुक्ति दिलाकर अमर करना है । जब दिन-रात निरन्तर प्रचलित हैं, तो उनके बन्धन से छुटकारा कैसे ?'' ऋषि याज्ञवल्क्य का समाधान था–दिन-रात के बन्धन से छूटने का तात्पर्य यजमान के लिए दिन-रात के चक्र से छूटना नहीं है । भौतिक संसार में सूर्य जो कार्य करता है, व्यक्ति के संसार में चक्षु या आंख का वही कार्य है । सूर्य के लिए दिन-रात का कोई अन्तर नहीं है, सर्वत्र प्रकाश रहता है, उसी प्रकार जिस व्यक्ति की तत्त्वज्ञान की आंख खुल जाती है, वह दिन-रात के बन्धन से छूट कर अमर, मुक्त हो जाता है, मोक्ष-अति मुक्ति पा लेता है ।

पुरोहित अश्वल की तीसरी जिज्ञासा थी–''यज्ञ का लक्ष्य यजमान को शुक्ल-कृष्ण पक्षों से मुक्त करवाकर अमर कर देना है। विश्व में हर पदार्थ के लिए शुक्ल-कृष्ण पक्ष होते हैं, प्रत्येक पदार्थ के पूर्व और अपर पक्ष होते हैं, फिर यजमान ही इन पक्षों के चक्र से कैसे मुक्त हो सकता है ?'' ऋषि याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट किया–पूर्व और अपर पक्षों से छूटने का तात्पर्य जीवन के अवश्यम्भावी पक्षों से छुटकारा पाना नहीं है । वायु भौतिक जगत् में जो कार्य करता है, व्यक्ति के क्षेत्र में प्राण वही कार्य करता है । जैसे वायु की पूर्व-पश्चिम, उत्तर दक्षिण दिशाएं हैं, ऐसे ही प्राण का भी दायां और बायां श्वास है, उन पर नियन्त्रण करना ही पहले-पिछले पक्षों से छुटकारा पाना है ।

पं॰ अश्वल की चौथी जिज्ञासा थी–''यज्ञ का लक्ष्य यजमान को स्वर्ग पहुंचाना है, जब अन्तरिक्ष का कोई आधार नहीं, तब किसी सीढ़ी सोपान से यजमान स्वर्ग कैसे पहुंचेगा ?'' ऋषि याज्ञवल्क्य का उत्तर था–यजमान के स्वर्ग पहुंचने का तात्पर्य यह नहीं है कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किसी स्थान विशेष पर स्वर्ग है । भौतिक जगत् में चन्द्रमा की जैसी स्थिति है, व्यक्ति के संसार में मन वही कार्य करता है । समुद्र में चन्द्रमा ज्वार-भाटा लाने में माध्यम है तो मन व्यक्ति के संसार में वही कार्य करता है । जब यजमान मन पर नियन्त्रण कर लेता है। तब वह स्वर्गलोक पहुंच जाता है । इस स्थिति को ही मुक्ति या अतिमुक्ति कहा जा सकता है ।

राजपुरोहित अश्वल की पांचवीं जिज्ञासा थी कि "राजा जनक के यज्ञ में कितनी और किन-किन ऋचाओं का प्रयोग होगा ?" ऋषि याज्ञवल्क्य का उत्तर था । पुरोनुवाक्या, याज्या और शस्या नामक तीन ऋचाएं प्रयुक्त की जायेंगी । पुरोनुवाक्या ऋचा यज्ञ का प्रारम्भ करते हुए यजमान के संकल्प को स्पष्ट करती है । याज्या वे ऋचाएं हैं जिन्हें बार-बार भिन्न-भिन्न रीति से पढ़ा जाता है । 'शस्या' नाम की तीसरी ऋचाओं के द्वारा सकल्प पूर्त्ति की स्थिति में मानसिक प्रसन्नता अभिव्यक्त की जाती है । इस यज्ञ में ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक कार्य को यज्ञ समझ कर उन में तीन प्रकार की शब्दावली प्रयुक्त की जा सकती है । समष्टि हो या व्यष्टि में तीन तरह के संकल्पकृत कार्यों का करना ही मुक्ति है—यही अति मुक्ति है ।

यज्ञ सम्बन्धी तीन और जिज्ञासाएं पुरोहित अश्वल ने प्रकट कीं, ऋषि याज्ञवल्क्य ने उन तीनों ही जिज्ञासाओं का यज्ञ में प्रचलित अर्थ में न कर भौतिक-व्यक्ति के संसार में व्यष्टि और समष्टि रूप में प्रचलित जीवन को यज्ञ का स्वरूप बतलाते हुए बतलाया कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड में एक जैसी ही प्रक्रिया प्रचलित है ।

ऋषि याज्ञवल्क्य के समाधान सुनकर पुरोहित अश्वल मौन होकर बैठ गया । अश्वल की सारी जिज्ञासाएं और प्रश्न यज्ञ के कर्म-काण्डियों से सम्बन्धित थीं । ऋषि याज्ञवल्क्य ने यज्ञ की हर बात को ज्ञानकाण्ड पर चरितार्थ कर स्पष्ट किया कि कर्मकाण्ड की प्रक्रिया से मुक्ति-अतिमुक्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत ज्ञानकाण्ड की प्रक्रिया से मुक्ति या अतिमुक्ति सम्भव है ।

यज्ञ में उपस्थित विद्वानों में जरत्कारुगोत्री आगे आए । उन्होंने पहली जिज्ञासा की—ग्रह और अतिग्रह कितने हैं ? ग्रह हुआ—ग्रहण करने वाला और अतिग्रह वह जिसकी पकड़ से छुटकारा न मिले और मानव उसके वशीभूत हो जाएं । ऋषि याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—"नासिका या नाक ग्रह है और गन्ध अतिग्रह । गन्ध मनुष्य को अपने वश में कर लेती है । वाणी को ग्रह कह सकते हैं, परन्तु मनुष्य इस वाणी का प्रयोग अपना नाम फैलाने में करते हैं । फलतः नाम अतिग्रह है । जिह्वा या जीभ ग्रह है, परन्तु विषयों का रस अतिग्रह है, इस रस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के कारण मनुष्य चटोरा बन जाता है। इसी प्रकार चक्षु या आंख ग्रह है, परन्तु रूप अतिग्रह है, इस रूप से मनुष्य मोहित हो जाता है। श्रोत्र ग्रह है परन्तु मनुष्य को संगीत आदि से बांधने वाला शब्द अतिग्रह है। मन ग्रह है परन्तु मन को वशीभूत करने वाली कामना अतिग्रह है। हाथ-हस्त ग्रह हैं, कर्म को अतिग्रह कह सकते हैं, त्वचा ग्रह है तो स्पर्श अतिग्रह है। इन अतिग्रहों के जाल में फंस कर मानव अपने पथ से भटक जाता है।

आर्तभाग की दूसरी जिज्ञासा थी—ग्रह-अतिग्रह, मृत्यु का स्वरूप धारण कर मानव जाति का संहार कर रहे हैं। इन अतिग्रहों विषयों के चक्र में फंसे मानव का उद्धार कैसे हो ? क्या इन अतिग्रहों का भी संहार सम्भव है ? ऋषि याज्ञवल्क्य का उत्तर था—ऐसा सम्भव है। देखिए आग से सब पदार्थ जल जाते हैं, परन्तु पानी इस अग्नि को भी बुझा देता है। अन्न के रूप में भक्षण कर लेता है। (**अग्निः वै मृत्युः स अपाम् अन्नम् अप**।) सच्चे ब्रह्म के साक्षात्कार से वे सब विषय समाप्त हो जाते हैं। जिनसे मानव ग्रहों-अतिग्रहों के माध्यम से पकड़ा जाता है।

आर्त्तभाग का तीसरा प्रश्न था—'हे याज्ञवल्क्य महोदय, जब मानव मृत्यु की गति प्राप्त करता है तब क्या इन्द्रियां उनके विषय जिन्हें ग्रह-अतिग्रह नाम दिया गया, उसके साथ ही जाते हैं ?' याज्ञवल्क्य का उत्तर था—'नहीं। वे यहीं भौतिक तत्त्वों में विलीन हो जाते हैं। काया से प्राण रूपी पक्षी चला जाता है। और काया यहीं पड़ी रहती है।' आर्त्तभाग की चौथी जिज्ञासा थी—'आपके कथनानुसार इन्द्रियां यहीं विलीन हो गई तो ऐसी भी कोई वस्तु है जिसे प्राण अपने साथ ले जाता है ? याज्ञवल्क्य का उत्तर था—'मनुष्य की मृत्यु के साथ उसका नाम उसके साथ जाता है।' (**अयं पुरुषः म्रियते, किम् एनं न जहाति इति नाम इति**।)

आर्त्तभाग की पांचवीं जिज्ञासी थी—'जब यह पुरुष मृत हो जाता है, तब इसकी वाणी अग्नि में, प्राण वायु में, चक्षु आदित्य में, मन चन्द्रमा में, कान दिशाओं में, शरीर पार्थिव तत्त्वों-पंचभूतों में विलीन हो जाते हैं, उस समय जीव का आधार शेष नहीं रहता, उस समय जीव कहां रहता है ?' (**क्व अयं तदा पुरुषः भवति इति**।)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने आर्त्तभाग से कहा—''यह विषय गम्भीर है, इस जनसमूह से पूर्ण स्थान पर चर्चा ठीक नहीं, हम दोनों इस पर अलग विचार विनिमय करें। **न नौ एतत् सजने इति आवाम् एव एतस्य वेदिष्याम**। महर्षि आर्त्तभाग को पृथक् ले गए, विचार विनिमय के बाद सभा के सम्मुख चर्चा का निष्कर्ष इस प्रकार प्रस्तुत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किया–'जीव अपने कर्मों के आधार पर बना रहता है । उन्होंने कर्म की ही प्रशंसा की । **(तौ ह यद् ऊचतुः, कर्म तद् ऊचतुः कर्म ह एव तद् प्रशंसतुः ।)** पुण्य कर्म से ही पुण्य जीवन मिलता है । **पुण्यः वै पुण्येन कर्मणा भवति** । पाप-कर्म से पापी जीवन मिलता है । **पापः पापेन इति** । ऋषि याज्ञवल्क्य के स्पष्टीकरण से आर्त्तभाग सन्तुष्ट हो गया ।

आर्त्तभाग के बाद भुज्यु आया, पर वह जमा नहीं । फिर उषस्त चाक्रायण ने जिज्ञासा की–यह जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है । अर्थात् प्रत्यक्ष ब्रह्म सब के अन्तर में उपस्थित आत्मा है । कृपया इसे समझाइए। ऋषि याज्ञवल्क्य ने समझाया–यह जो आत्मा तुम्हारे आभ्यन्तर में और सब के अन्तर में है । **(यः आत्मा सर्वान्तरः ।)** उषस्त ने जिज्ञासा की कौन-सा आत्मतत्त्व सब के आभ्यन्तर में है ? **कतमः याज्ञवल्क्य सर्वान्तरः ।** महर्षि याज्ञवल्क्य का उत्तर था । सब के आभ्यन्तर में जो आत्मतत्त्व विद्यमान दिखलाई देता है, वही तुम्हारा प्रत्यक्ष आत्मतत्त्व है । **(यः प्राणेन प्राणिति स ते आत्मा सर्वान्तरः ।)** इसी प्रकार अपान, व्यान, उदान की क्रियाएं करने वाला प्रत्यक्ष आत्मतत्त्व है । **यः अपानेन-व्यानेन-उदानेन अपानिति । व्यानिति । उदानिति । स ते आत्मा सर्वान्तरः–एष ते आत्मा सर्वान्तरः ।** याज्ञवल्क्य का विवेचन था–आप आत्मा देखना चाहते हो, इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है । प्राण, अपान, व्यान, उदान को गति देने वाला उनसे पृथक् है, जैसे ये कार्य प्रत्यक्ष हैं तो आत्मा भी उनके समान ही प्रत्यक्ष है । उससे अधिक नहीं ।

उषस्त के शान्त होने पर कुषीतकी के पुत्र कहोल ने मांग की–साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म-सर्वान्तर आत्मा की कुछ अधिक व्याख्या कीजिए । याज्ञवल्क्य ने उषस्त को बतलाया समाधान दुहराया–एष ते आत्मा सर्वान्तरः । यह तुम्हारा आत्मतत्त्व सब के आभ्यन्तर में है । कहोल ने जिज्ञासा प्रकट की–हमें भूख-प्यास लगती है । शोक, मोह बुढ़ापे और मृत्यु से पीड़ित हैं, आत्मतत्त्व को तो इन सब से परे कहा जाता है, पुनः वह हमारे आभ्यन्तर में अवस्थित कहा जाता है, उसे आत्मा क्यों कहा गया ?

ऋषि याज्ञवल्क्य ने स्पष्टीकरण किया–आभ्यन्तर में अवस्थित आत्मा के भली प्रकार जान लेने पर व्यक्ति पुत्र-सन्तान, वित्त-धन, सम्पदा और अपने को अभिव्यक्त करने वाली पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा की तीनों एषणाओं, कामनाओं से मुक्त हो जाता है । जब तक मानव अन्तर में अवस्थित आत्मा को न जानकर सांसारिक विषयों में ही अपने को लिप्त होने में भरमाया रहता है, तब तक वह इन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इच्छाओं, एषणाओं के चक्र में फंसा रहता है ।

उसके बाद तत्कालीन विवाद में अग्रणी गार्गी ने खड़े होकर एक साथ कई प्रश्न कर दिए । ऋषि याज्ञवल्क्य ने समझाया कि ऐसे प्रश्न न करो जिन का कोई सम्बन्ध नहीं हो । ऋषि ने समझाया ब्रह्म की सत्ता स्वीकार कर लेने के बाद कोई प्रश्न नहीं रहता । इसलिए हे गार्गी ! अतिप्रश्न करने उचित नहीं हैं । गार्गी के बैठ जाने पर आरुणि उद्दालक ने ऋषि से जिज्ञासा की कि क्या वह ऐसा सूत्र जानते हैं जिसमें यह लोक, परलोक और सब भूत माला के मनके की तरह गुंथे हुए हों । लोक, परलोक और सब भूतों को नियमित करने वाले अन्तर्यामी को जानते हो तो स्पष्ट करो ।

याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट किया कि वायु, ब्रह्माण्ड और प्राण पिण्ड में ऐसे सूत्र हैं जिन में ये लोक-परलोक और सब भूत मनके की तरह प्रयुक्त किए गए हैं । पुरुष के प्राण प्रयाण करते ही इसी कारण उसके सभी अंग सुस्त पड़ जाते हैं, उसी प्रकार जैसे माला का तार या सूत्र निकलने पर माला के सब मोती बिखर जाते हैं । अन्तर्यामी की व्याख्या करते हुए ऋषि ने स्पष्ट किया । पृथिवी में रहता हुआ भी वह पृथिवी से पृथक् है । परन्तु उस का नियमन करने वाला ही तुम्हारा भी आत्मा है । वही अमृत है, वही अन्तर्यामी है । इसी प्रकार वह जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्यु, आदित्य दिशाओं, चन्द्र-तारक, आकाश, तम, तेज आदि में ब्रह्माण्ड के पदार्थों में रहते हुए उन से पृथक् अस्तित्व होने के कारण उन का नियमन कर रहा है । यही बात वाणी, चक्षु, श्रोत्र मन, त्वचा, विज्ञान, रेतस् आदि आधिदैविक-पिण्ड के पदार्थों में भी सार्थक है ।

ऋषि ने कहा—वह अन्तर्यामी द्रष्टा है, दृश्य नहीं । मन्ता है, मत नहीं । विज्ञाता है, विज्ञात नहीं । वह श्रोता है, श्रुत नहीं । विश्व में उसके अतिरिक्त कोई द्रष्टा, श्रोता नहीं । मन्ता विज्ञाता नहीं । **(अदृष्टः द्रष्टा, अश्रुतः श्रोता, अमतः मन्ता, अविज्ञातः विज्ञाता, नान्यः अतः अस्ति अस्ति श्रोता, नान्यः अतः अस्ति मन्ता, नान्यः अतः अस्ति विज्ञाता ।)** वह तुम सब का अन्तर्यामी अमृत आत्मा है। **एषः ते आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।** उसके जाने बिना दुःख ही दुःख है । **'अतः अन्यत् आर्तम् ।'**

यज्ञ-सभा में विदुषी गार्गी—बहुत बोलने वाली होने से 'वाचक्नवी' कहलाने वाली उस नारी ने ऋषि याज्ञवल्क्य से कहा—मेरी दो जिज्ञासाएं हैं यदि उनका ऋषि ने समाधान कर दिया तो समझ लो कि इस सभा में कोई भी ऐसा नहीं है, जो ब्रह्मवेत्ता को परास्त कर देगा । मेरी पहली जिज्ञासा यह है—'द्यु से ऊपर और पृथिवी से नीचे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है । जिसे भूत, भवत्, भविष्यत् कहते हैं ? वे सब किस में ओत-प्रोत हैं । ऋषि याज्ञवल्क्य का उत्तर था—'आकाश में ।' विदुषी गार्गी की दूसरी जिज्ञासा थी—यह आकाश किस में ओत-प्रोत है ? याज्ञवल्क्य ने सूचित किया । आकाश जिसमें ओत-प्रोत है, ब्रह्मवेत्ता उसे अक्षर कहते हैं । (**स ह उवाच, एतद् वै तद् अक्षरम् गार्गी ब्राह्मणाः अभिवदन्ति ।**) ऋषि ने कहा—वह अक्षर स्थूल नहीं है, छोटा भी नहीं है, बड़ा भी नहीं है, वह जीभ या वाणी का विषय भी नहीं है, वह नाम का विषय भी नहीं है । वह नेत्र का विषय भी नहीं है, वह कान और वाणी का विषय भी नहीं है । (**अस्थूलम् अनणुः, अस्वल्पम्, अदीर्घम्, अरसम्, अचक्षुष्कम्, अश्रोत्रम्, अवाग् ।**)

ऋषि ने कहा—इसी अक्षर ब्रह्म के अनुशासन में बन्धे सूर्य-चन्द्र अपनी मर्यादा में स्थित हैं, इसी अक्षर ब्रह्म के शासन में द्युलोक और पृथिवी लोक अपनी मर्यादा में अवस्थित हैं, इसी अक्षर के शासन-सूत्र में नदियां, श्वेत हिममण्डित पर्वतों से विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित हो रही हैं । (**सूर्याचन्द्रमसौ विद्युतौ तिष्ठतः, एतस्य वै अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः ।** हे गार्गी ! यह अक्षर स्वतः अदृष्ट होने पर भी द्रष्टा है, स्वयं न सुने जाने पर भी श्रोता है । मतहीन होकर भी मन्ता है, अविज्ञान होने के बावजूद सब का जानकार है, इस अक्षर के अतिरिक्त कोई दूसरा द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, विज्ञाता नहीं है ।

एतद् अक्षरम् गार्गि अदृष्टम् द्रष्टृ, अश्रुतम् श्रोतृ अमतं मन्ता, अविज्ञातं विज्ञातृ, न अन्यद् अतः अस्ति द्रष्टृ, न अन्यद् अतः अस्ति श्रोतृ, न अन्यद् अतः अस्ति मन्तृ, न अन्यद् अतः अस्ति विज्ञातृ—हे गार्गी इस अक्षर ब्रह्म में ही यह आकाश ओत-प्रोत है । **अस्मिन् नु खलु अक्षरे गार्गि आकाश ओतः च प्रोतः च इति ।**

ब्रह्मवादिनी गार्गी ने कहा—इस ब्रह्मवेत्ता को नमस्कार कर शान्त हो जाइए । आप में से कोई इस ब्रह्मवेत्ता को पराजित न कर सकेगा।

उस युग के एक क्रोधी विदग्ध शाकल्य ने जिज्ञासा की—हे याज्ञवल्क्य, इस संसार में कितने देवता हैं ? याज्ञवल्क्य ने पहले "तीन फिर तीन सौ और फिर तीन सहस्र तीन देवता कहे । शाकल्य ने उत्तर से असन्तोष प्रकट किया तो ऋषि ने तैंतीस देवता कहे । शाकल्य द्वारा जिज्ञासा दोहराने पर याज्ञवल्क्य ने पहले छह, फिर तीन, फिर दो और अन्त में एक कहा । घोषित किया—यह परमेश्वर एक है । शाकल्य ने कहा फिर आपने तीन हजार तीन देवता क्यों कहे ? ऋषि का उत्तर था । भगवान् की महिमा का वर्णन करने के लिए (**महिमानः एव एषाम्**) सृष्टि के कर्ता के बारे में वैदिक चिन्तन है । यह सृष्टि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ही विराट् पुरुष है । वेद के पुरुष सूक्त, गीता में श्री कृष्ण द्वारा विराट् भगवद् दर्शन । इसी उपनिषद् में बालाकि द्वारा अजातशत्रु को सृष्टि में विराट् पुरुष ब्रह्म की चर्चा की गई है । याज्ञवल्क्य ने सृष्टि को स्वयं ब्रह्मदेव का शरीर कहा—ब्रह्म इससे कहीं अधिक है, विश्व में ही ब्रह्म की मर्यादा नहीं है ।

अन्त में ऋषि याज्ञवल्क्य ने उपस्थित विद्वन्मण्डली से प्रश्न पूछने के लिए कहा । जब उन्होंने कोई जिज्ञासा नहीं की तब ऋषि ने विद्वानों से जिज्ञासा की वृक्ष के काटने पर जड़ से नया वृक्ष पैदा हो जाता है, परन्तु मृत्यु हो जाने पर वीर्य से भी पुरुष फिर पैदा नहीं होता । जिज्ञासा होती है कि वह पुनर्जन्म कैसे लेता है ? इसका उत्तर ऋषि ने दिया—यह आत्मा तो सदा जीता ही है, वह मरता नहीं, फिर पैदा होने का प्रश्न ही नहीं । **(जातः एव, न जायते. कः नु एनम् जनयेत् पुनः ।)**

एक बार विदेह-राजा जनक बैठे थे । महर्षि याज्ञवल्क्य पधारे। उन्होंने कहा—क्या आप सूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन करने आए हैं ? महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा—बात ठीक है, पहले आप बतलाइए आपको किन-किन गुरुओं ने क्या शिक्षा दी है ।

राजा जनक ने स्वीकार किया उनके पहले गुरु जित्वा शैलिनि थे, उनकी शिक्षा थी—१. वाणी ही ब्रह्म है, उसकी उपासना करो । २. दूसरे गुरु उदंक शौल्वायन थे । उन्होंने प्राण को ब्रह्म कह उसकी उपासना करने का आदेश दिया । ३. तीसरे गुरु बर्क्कु वार्ष्ण का उपदेश था ब्रह्मचक्षु की उपासना करो । ४. चौथे गुरु गर्दभीविपीत भारद्वाज ने श्रोत्र को ब्रह्म मान कर उसकी उपासना सिखाई । ५. पांचवें गुरु सत्यकाम जावाल ने मन ब्रह्म की उपासना करने की सीख दी । ६. छठे गुरु विदग्ध शाकल्य ने हृदय-ब्रह्म की उपासना करने का परामर्श दिया ।

ऋषि याज्ञवल्क्य ने समझाया वाणी को ब्रह्म मानने पर गूंगा उसकी उपासना कैसे करेगा । प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन हृदय आदि को ब्रह्म मानने से इनसे शून्य व्यक्ति कैसे ब्रह्म की उपासना करेगा । ये सब ब्रह्म के एकांश हैं । ब्रह्म का बड़ा अंश रह जाता है । प्रत्येक के आयतन, प्रतिष्ठा को जान कर पूर्ण ब्रह्म को जानना होगा । हम किसी भी पदार्थ के एक हिस्से को लेकर सर्वांश नहीं मान सकते। सम्पूर्ण को जानने के लिए उसका पूर्ण ज्ञान आवश्यक है ।

विदेहराज जनक ब्रह्मर्षि का समाधान सुन कर सिंहासन से उतर कर बोले—मुझे शिष्य समझ कर शिक्षा दीजिए । मैं आपको नमस्कार करता हूं । याज्ञवल्क्य ने कहा—राजन् आपने वेद-उपनिषदों का ज्ञान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राप्त किया । इससे अधिक जानना चाहते हैं तो बतलाइए– "इस जगत् से कहां जायेंगे ।" जनक का उत्तर था–"मुझे मालूम नहीं ।"

इस पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने पिण्ड, ब्रह्माण्ड में व्यक्ति के जीवन और संसार में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय अवस्थाओं का उल्लेख किया । व्यक्ति की जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति की तीन अवस्थाएं सब जानते हैं, चौथी अवस्था वह है जब आत्मा अपने स्वरूप में चला जाता है । उस अवस्था में आत्मा को ग्रहण नहीं किया जा सकता, वह छिन्न-भिन्न नहीं हो सकता, वह असंग है, वह बन्धन, दुःख और भय से रहित है । **'आत्मा अगृह्यः न गृह्यते, अशीर्यः न हि शीर्यते, असंगः, असितः, न व्यथते, न रिष्यति, अभयः ।'** व्यक्ति जीवन की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय अवस्थाओं की तरह सृष्टि की भी कार्यजगत्, जाग्रत अवस्था स्थावर, स्वेदज, अण्डज, जेरज के स्थान पर सूर्य, चन्द्र, पृथिवी स्वप्नावस्था में बने रहते हैं, तीसरी सुषुप्ति स्थिति में सृष्टि तन्मात्राओं-कारणावस्था में चली जाती है । तुरीय चौथी स्थिति व्याख्या योग्य नहीं है । आत्मा और सृष्टि इसी चौथी अवस्था की स्थिति पाने के लिए प्रतिबद्ध हैं ।

विदेहराज जनक द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने समझाया–सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि से मानव जो आनन्द प्राप्त करता है वह मानुष आनन्द है । इस प्रकार के सौ मानुष आनन्द एक पितर आनन्द के तुल्य हैं । सौ पितर आनन्दों से एक गन्धर्व आनन्द की प्राप्ति होती है । सौ गन्धर्व आनन्दों से एक ब्रह्मलोक का आनन्द है । महर्षि याज्ञवल्क्य ने विदेहराज जनक को उसी ब्रह्मलोक का आनन्द प्राप्त करने का परामर्श दिया ।

यह मानव शरीर, उसी समय तक स्पन्दित होता है । जब तक आत्मा की शक्ति इन्द्रियों में बिखरी रहती है, जब वह अपनी शक्तियां खींच लेता है, तब वह चला गया ऐसा समझा जाता है । जब आत्मा शक्तियां समेट लेता है । तब वह बोलता नहीं, सुनता नहीं, छूता नहीं । आत्मा के प्रकाश के साथ शरीर से निकल जाता है– कहां से जाता है, यह आत्मा शरीर से निकलता है, आंख से, मूर्धा से या शरीर के अन्य प्रदेश से । जब आत्मा निकल रहा होता है । तब प्राण उसके पीछे चल पड़ता है । **(एषः आत्मा निष्क्रामति, चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो व अन्येभ्यः वा शरीरदेशेभ्यः तम् उत्क्रामन्तम् प्राणः अनु उत्क्रामति।)** पुनर्जन्म का वर्णन कर कहा गया है । जैसे तिनके के एक सिरे से दूसरे तिनके का सहारा पकड़ा जाता है, उसी प्रकार यह आत्मा इस काया को छोड़कर पहले ज्ञान शून्य होकर दूसरे शरीर का सहारा लेकर अपने को समेट लेता है । **(तद् यथा तृणं जलायुका**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तृणस्य अन्तं गत्वा अन्यम् आक्रमम् आक्रम्य आत्मानम् उपसंहरति एवम् एव अयम् आत्मा इदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयित्वा अन्यम् आक्रमम् आक्रम्य आत्मानम् उपसंहरति ।

अगर कोई आत्मा को जान ले तो इस शरीर के पीछे पड़े रहने का ज्वर उसका स्वतः समाप्त हो सकता है । सम्पूर्ण रूप का दर्शन करने वाला पापों के वश में नहीं रहता । ऐसा आत्मज्ञानी, निर्मल, सन्देह शून्य ब्रह्मज्ञानी बन जाता है । याज्ञवल्क्य ने राजा जनक को समझाया । यह आत्मज्ञान ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति का सच्चा ज्ञान है।

इस उपनिषत् के पांचवें अध्याय में उपनिषत्कार ऋषि ने खं, द, हृदय, सत्य, भूः, भुवः, स्वः, विराट् पुरुष, विद्युत् ब्रह्म, वाग् ब्रह्म, वैश्वानर, ऊर्ध्वगमन, तप, अन्न ब्रह्म, प्राण ब्रह्म, उक्थ यजुः, साम, क्षत्र, गायत्री आदि प्रमुख शब्दों की व्याख्या की है । द अक्षर का सन्देश अन्त में लेंगे पहले हृदय की व्याख्या सुनिए ।

हृदय तीन कार्य करता है, ह से हरति, द से ददाति और य से याति—यह लेता है, देता है और चलता है । हृदय रुधिर लेता देता है, वह उसे शुद्ध करता है । ३. तप का व्याधि से पीड़ित होकर दुःखी न होना तप है । मृत पुरुष को प्रज्वलित अग्नि में रखना परम तप है । ४. अन्न-ब्रह्म और प्राण ब्रह्म की महत्ता । अन्न तथा प्राण एक रूप समन्वित होकर परमश्रेष्ठ रूप पाते हैं । ५. गायत्री की भूः, भुवः, स्वः— अस्ति, भाति, प्रीति, तीनों व्याहृतियों को जीवन में सार्थक करना चाहिए ।

'द' अक्षर का सन्देश : दीक्षा द अक्षर.की

इसी उपनिषत् की कथा है । प्रजापति ब्रह्मा की तीन प्रकार की सन्तानें थीं—देवता, मनुष्य और असुर । तीनों ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पिता ब्रह्मा के पास पढ़ते थे । शिक्षा पूर्ण होने पर देवता प्रजापति से बोले—"गुरुदेव, हमें दीक्षा दीजिए ।" प्रजापति ने कहा—'द'। एक अक्षर मात्र । फिर पूछा— "इसका मतलब समझे ।" देवता बोले—"हम समझ गए । हम इन्द्रियलोलुप हैं, आपने हमें इन्द्रियों का नियन्त्रण करने के लिए कहा है ।" प्रजापति ने कहा—"तुम ठीक समझे हो ।"

फिर मनुष्य शिक्षा पूर्ण कर प्रजापति के पास गए, उन्होंने भी दीक्षा देने की प्रार्थना की तो उनको भी 'द' अक्षर की दीक्षा दी । पूछा—इस 'द' का अर्थ समझे । मानव बोले—"हम समझ गए । हम मानव लोभी हैं । आपने हमें दान दो की दीक्षा दी है ।" प्रजापति ने कहा—"तुम ठीक मतलब समझे हो ।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अन्त में असुर प्रजापति के पास गए । उन्होंने दीक्षा मांगी तो प्रजापति ने उन्हें भी 'द' अक्षर की दीक्षा दी । पूछा–इस द अक्षर का अर्थ समझे ।'' असुरों ने कहा–''हम क्रूर लोग हैं, आपने हमें दया करने के लिए कहा है ।''

उपनिषत्कार ने शिक्षा दी है–बिजली–विद्युत् आज भी कड़क कर, गरजकर, प्रजापति का सन्देश दुहरा रही है– **द-द-द** ! दमन करो । दान करो । और दया करो ।

बृहदारण्यक उपनिषत् के छठे अध्याय के कुछ शब्द हैं–उनके अर्थ उपनिषत्कार के शब्दों के प्रयोग से समझने होंगे, भाष्यकारों ने उनके अर्थ भ्रान्त किए हैं । सन्दर्भ में उल्लेख है–पण्डित, प्रख्यात सभाओं में जाने वाला अपनी पूरी आयु भोगने वाला, उड़द की दाल, चावल को घी डालकर खायें तो शक्तिशाली स्त्री पुरुष वृषभ सरीखी सबल सन्तान प्राप्त कर सकते हैं । सम्भवतः **'माषौदन'** उड़द की दाल की खिचड़ी, घी का प्रयोग लिपिकार ने लिखा था, भ्रान्ति से वह मांसौदन हो गया है ।

छठे अध्याय के चौथे प्रकरण में वीर पिता, वीर माता के वीर पुत्र की आकांक्षा की गई है । **वीरे वीरम् अजीजनत् ।**

इसी प्रकरण में सन्तान कैसी हो, वह पिता–पितामह से बढ़ कर हो । **अति पिता** तथा **अति पितामह** शब्दों का प्रयोग इसी दृष्टि से किया गया है ।

यह दसवीं सब उपनिषदों से बड़ी उपनिषद् है और वनों में इसका उपदेश हुआ । इस में इसका सन्देश मानव मात्र को वैदिक तत्त्व ज्ञान सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है ।

–अभ्युदय, बी-२२,
गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-४९

पुस्तक समीक्षा

'अमृतपथ'–भारतीय संस्कृति का समग्र चिन्तन एवं दर्शन सार रूप में अनुभव के धरातल से सिक्त होकर 'अमृतपथ' में आ गया है । लेखक ने वेद के आधार पर मानव जीवन को महान एवं यशस्वी बनाने तथा मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास--अर्थात् शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक उन्नति को प्राप्त होकर प्रभु दर्शन प्राप्त करने का बड़ा ही सरल एवं प्रेरणादायक मार्ग-दर्शन किया है । मानव-मात्र के पढ़ने तथा इष्ट-मित्रों को भेंट देने योग्य पुस्तक है ।

लेखक–कृष्णऔतार

पृष्ठ १०४, मूल्य १०/- रु०, सैकड़ा ८००/- रु०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

आनन्द गायत्री कथा	१४.००
एक ही रास्ता	१२.००
शंकर और दयानन्द	८.००
मानव जीवन-गाथा	१३.००
सत्यनारायण व्रत कथा	६.००
भक्त और भगवान	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१८.००
घोर घने जंगल में	२२.००
मानव और मानवता	३२.००
प्रभु मिलन की राह	२०.००
यह धन किसका है ?	२२.००
बोध-कथाएँ	१८.००
दो रास्ते	१७.००
दुनिया में रहना किस तरह	१७.००
तत्त्वज्ञान	२२.००
प्रभु-दर्शन	१७.००
प्रभु-भक्ति	१२.००
महामन्त्र	१४.००
सुखी गृहस्थ	७.००
त्यागमयी देवियाँ	९.००

MAHATMA ANAND SWAMI

Anand Gayatri Katha	30.00
The Only Way	30.00
Bodh Kathayen	40.00
How To Lead Life?	30.00

महर्षि दयानन्द

व्यवहारभानु	४.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	१.५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला	१.५०
पंचमहायज्ञ विधिः	८.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सत्यार्थ प्रकाश	१२५.००
महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१७५.००
षड्दर्शनम्	१५०.००
चाणक्यनीति दर्पण	६०.००
विदुरनीतिः (हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी)	४०.००
ब्रह्मचर्य गौरव	९.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९.००
कुछ करो कुछ बनो	१२.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२.००
आदर्श परिवार	१५.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	८.००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५.००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५.००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	१०.००
यजुर्वेद शतकम्	१०.००
सामवेद शतकम्	१०.००
अथर्ववेद शतकम्	१०.००
भक्ति संगीत शतकम्	६.००
चमत्कारी औषधियाँ	१५.००
घरेलू औषधियाँ	१५.००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०.००
स्वर्ण पथ	१२.००
प्रभात-वन्दन	८.००
प्रार्थना-प्रकाश	८.००
शिवसंकल्प	८.००
प्रार्थना लोक (सजिल्द)	४०.००
वेद सौरभ	१२.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आचार्य उदयवीर शास्त्री

न्यायदर्शन भाष्य	१५०.००
वैशेषिकदर्शन भाष्य	१५०.००
सांख्यदर्शन भाष्य	१२५.००
योगदर्शन भाष्य	१००.००
वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र)	१८०.००
मीमांसादर्शन का विद्योदय भाष्य	३५०.००
सांख्यदर्शन का इतिहास	२५०.००
सांख्य सिद्धान्त	२००.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	२००.००
प्राचीन सांख्य सन्दर्भ	१००.००
वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह)	२५०.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

दीप्तिः	८०.००
आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे	४०.००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	४०.००
वेद मीमांसा	प्रेस में

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

शतपथ ब्राह्मण (तीन खण्ड)	प्रेस में
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	१५.००
विवाह और विवाहित जीवन	१८.००
जीवात्मा	४०.००
भगवत् कथा	१२.००

प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश	२५.००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	१५०.००

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

वैदिक ज्ञान-धारा	८०.००
महात्मा हंसराज	६०.००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (१ खण्ड)	२४०.००
आर्य सूक्ति सुधा	१२.००

प्रो. नित्यानन्द पटेल

पूर्व और पश्चिम	३५.००
सन्ध्या विनय	६.००

डॉ. भवानीलाल भारतीय

बिखरे मोती	४०.००
कल्याण मार्ग का पथिक	प्रेस में
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (११ खण्डों में)	६६०.००
आर्य समाज के बीस बलिदानी	१५..००
श्याम जी कृष्ण वर्मा	२४.००
आर्य समाज विषयक साहित्य परिचय	२५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा	१०.००
वैदिक धर्म	२५.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

ईश्वर का स्वरूप	प्रेस में
सहेलियों की वार्ता	२०.००

लेः देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
अनुः पं. घासीराम

महर्षि दयानन्द चरित	२५०.००

क्षितीश वेदालंकार

चयनिका	१२५.००

पं. रामनाथ वेदालंकार

वैदिक मधुवृष्टि	६०.००

आ. प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल	५०.००

पं. चन्द्रभानु सिद्धान्ताभूषण

महाभारत सूक्ति सुधा	४०.००

पं. जगन्नाथ पथिक

सन्ध्या योग ब्रह्म साक्षात्कार	१२५.००

पं. विश्वनाथ विद्यालंकार

सन्ध्या रहस्य	२५.००

प्रो. रामविचार एम.ए.

आर्य समाज का कायाकल्प कैसे हो ?	४.००

पं. नन्दलाल वानप्रस्थी

गीत सागर	२५.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आ. उदयवीर शास्त्री

आचार्य शंकर का काल	१०.००

पं. वीरसेन वेदश्रमी

याज्ञिक आचार संहिता	४५.००
वैदिक सम्पदा	१७५.००

नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रेरक बोध कथाएँ	१५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार गायत्री शतकम्	३.००

पं. सत्यपाल विद्यालंकार

श्रीमद्भगवद्गीता	१५.००

WORKS OF SVAMI SATYA PRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.)	800.00
Coinage in Ancient India (Two Vols.)	600.00
Geometry in Ancient India	350.00
Brahmgupta and His Works	350.00
The Critical, Cultural Study of Satapath Brahman	In Press
Speeches, Writings and Addresses	
Vol.I : VINCITVERITAS	150.00
Vol.II : ARYA SAMAJ : A RENAISSANCE	150.00
Vol.III : DAYANAND : A PHILOSOPHER	150.00
Vol. IV : THREE LIFE HAZARDS	150.00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	४.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८.००
वैदिक संध्या	१.००
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य)	१२.००
संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८.००
Vedic Prayer	in press

पं. वा. विष्णुदयाल (मॉरीशस)

वेद भगवान बोले	१५.००

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५.००

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द	५.००
गुरु विरजानन्द	५.००
स्वामी श्रद्धानन्द	५.००
धर्मवीर पं. लेखराम	५.००
मुनिवर पं. गुरुदत्त	५.००
स्वामी दर्शनानन्द	५.००

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

महात्मा हंसराज	४.५०
स्वामी स्वतन्त्रानन्द	४.५०
महात्मा नारायण स्वामी	५.५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द	५.५०

सुनील शर्मा

हमारे बालनायक	८.००
देश के दुलारे	९.००
हमारे कर्णधार	८.००
गिरती दीवारें	१२.००

नीरू शर्मा

आदर्श महिलाएँ	१०.००
पहली हार पहली जीत	१२.००

स्वामी दर्शनानन्द

कथा पच्चीसी	९.००
बाल शिक्षा	२.५०

डॉ. कृष्ण वल्लभ पालीवाल

वैदिक राष्ट्रीय ऋचाएँ	१२.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हरिशचन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार	३.००

पं. रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली	२५.००

ब्र. नन्दकिशोर

आचार्य गौरव	५.००

पं. नारायण स्वामी

प्राणायाम विधि	२.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम.ए.

नैतिक शिक्षा—प्रथम	२.५०
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	३.००
नैतिक शिक्षा—तृतीय	४.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	५.५०
नैतिक शिक्षा—पंचम	५.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	६.००
नैतिक शिक्षा—सप्तम	६.००
नैतिक शिक्षा—अष्टम	६.००
नैतिक शिक्षा—नवम	९.००
नैतिक शिक्षा—दशम	९.००

डॉ. मनोहर लाल

जीने का सही ढंग	१२.००

डॉ. देवव्रत आचार्य

योग शिक्षा-१	१२.००
योग शिक्षा-२	१०.००
योग शिक्षा-३	१०.००
योग शिक्षा-४	१०.००

चित्र

स्वामी दयानन्द १६" X २२" बहुरंगी	४.००
स्वामी दयानन्द (कुर्सी) १८" X २२"	३.००
स्वामी दयानन्द (आसन) १८" X २२"	३.००
स्वामी श्रद्धानन्द १८" X २२" एक रंग	३.००
गुरु विरजानन्द १८" X २२" एक रंग	३.००
पण्डित लेखराम १८" X २२" एक रंग	३.००
स्वामी दर्शनानन्द १८" X २२" एक रंग	३.००
गुरुदत्त विद्यार्थी १८" X २२" एक रंग	३.००
महात्मा हंसराज १८" X २२" एक रंग	३.००

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको उपलब्ध हों तो पुड़िया आदि की क्या जरूरत है।

घर का वैद्य—प्याज	७.००
घर का वैद्य—लहसुन	७.००
घर का वैद्य—गन्ना	७.००
घर का वैद्य—नीम	७.००
घर का वैद्य—सिरस	७.००
घर का वैद्य—तुलसी	७.००
घर का वैद्य—आँवला	७.००
घर का वैद्य—नींबू	७.००
घर का वैद्य—पीपल	७.००
घर का वैद्य—आक	७.००
घर का वैद्य—गाजर	७.००
घर का वैद्य—मूली	७.००
घर का वैद्य—अदरक	७.००
घर का वैद्य—हल्दी	७.००
घर का वैद्य—बरगद	७.००
घर का वैद्य—दूध-घी	७.००
घर का वैद्य—दही-मट्ठा	७.००
घर का वैद्य—हींग	७.००
घर का वैद्य—नमक	७.००
घर का वैद्य—बेल	७.००
घर का वैद्य—शहद	७.००
घर का वैद्य—फिटकरी	७.००
घर का वैद्य—साग-भाजी	७.००
घर का वैद्य—अनाज	७.००
घर का वैद्य—फल-फूल	७.००
घर का वैद्य—धूप-पानी	१५.००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध, कीमत ४५.०० रुपये प्रत्येक

घर का वैद्य (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	
घर का वैद्य (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	
घर का वैद्य (गाजर, मूली अदरक, हल्दी, बरगद)	
घर का वैद्य (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	
घर का वैद्य (शहद, अनाज, साग-भाजी, फल-फूल, फिटकरी)	
घर का वैद्य—धूप-पानी	४०.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अन्य प्रकाशन

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार

आर्य समाज का इतिहास (भाग १)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग २)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ३)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ४)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ५)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ६)	३२५.००
प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग	५६.००
दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति	५८.००
पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया का आधुनिक इतिहास	७७.००
प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक और आर्थिक जीवन	७२.००
मध्य एशिया व चीन में भारतीय संस्कृति	५८.००
प्राचीन भारत	८०.००
भारतीय संस्कृति का विकास	७७.००
प्राचीन भारत की शासन संस्थाएँ और राजनीतिक विचार	५८.००
एशिया का आधुनिक इतिहास	१३०.००
यूरोप का इतिहास	१४०.००
समाजशास्त्र	८०.००
चाणक्य	६५.००
मौर्य साम्राज्य का इतिहास	१३५.००
भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास	५८.००
भारत का इतिहास	५५.००
विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ	१७५.००
मध्यकालीन भारत	५८.००
प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास	३२५.००
Political Thought of Swami Dayanand	150.00

डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

एकादशोपनिषद्	१२५.००
उपनिषद् प्रकाश	११०.००
श्रीमद्भगवद्गीता	१०५.००
संस्कार चन्द्रिका	१२०.००
बुढ़ापे से जवानी की ओर	९५.००
होमियोपैथिक चिकित्सा	१२५.००
होमियोपैथिक चित्रण	१२५.००
होमियोपैथी का क ख ग	१००.००
होमियोपैथी के मूल सिद्धान्त	८०.००
वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व	४०.००
From old age to youth through Yoga	80.00
चतुर्वेद गंगालहरी	९५.००
मेरी नानी की कहानी	३५.००
माँ और बच्चा	२५.००

चूमपति एम.ए.

योगेश्वर कृष्ण	४०.००
वैदिक स्वर्ग	३०.००
वैदिक दर्शन	१५.००
अनादि तत्त्व	२५.००
विचार वाटिका (भाग दो)	१००.००

स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

अग्निहोत्र सर्वस्व	१०.००
उपहार सर्वस्व	५.००
मृत्युञ्जय सर्वस्व	१०.००
स्वाध्याय सर्वस्व	१२.००
उपनयन सर्वस्व	१०.००
दो पुटन के बीच	८.००
ए लविंग टोकन	५.००

पं. शिवकुमार शास्त्री

श्रुति सौरभ	६०.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुस्तक परिचय

षड्दर्शनम् : ***स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ।*** दर्शन वेदों के उपाङ्ग हैं । वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्म-सिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में इन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है । यदि आप जानना चाहते हैं कि भारतीय दर्शनों की विशेषताएं क्या हैं, तो इस ग्रन्थ को पढ़ जाइये।

चयनिका : ***क्षितीश वेदालंकार ।*** पुस्तक में ऋषि दयानन्द, आर्य-समाज, ईश्वर, वेद, सत्यार्थप्रकाश, शिक्षा, संस्कृति, धर्म, समाज, राजनीति, आर्य महापुरुष- आदि चुने हुए लेखों का संग्रह है ।

वैदिक मधुदृष्टि : ***डॉ॰ रामनाथ वेदालंकार ।*** पुस्तक में परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव, उपासना, माधुर्य, मानव शरीर के महत्त्व, आचार्य-शिष्य, राष्ट्रोन्नति, शिक्षाशास्त्र, यज्ञ-चिकित्सा, योग-सिद्धि, वैदिक काव्यालंकार, मानवता आदि विषयों पर निबन्ध हैं।

वेदोद्यान के फूल : ***आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ।*** इस पुस्तक में वेद, ईश्वर, सृष्टि, प्रलय, उपासना, स्वास्थ्य, और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, राष्ट्रनिर्माण आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्ध रखने वाले कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वेद-मन्त्रों और सूक्तों का संग्रह है ।

सृष्टि-विज्ञान और विकासवाद : ***स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ।*** पुस्तक में जीवन की उत्पत्ति, गर्भशास्त्र, लुप्तजन्तु शास्त्र, योग्यतम की विजय, श्रमिक विकास, भूगर्भशास्त्र, ज्ञान की उत्पत्ति और उसका संक्रमण आदि विषयों पर वैज्ञानिक दृष्टि से प्रमाण-पुरस्सर व तर्क-प्रतिष्ठित विवेचन किया गया है ।

याज्ञिक आचार संहिता : ***पं॰ वीरसेन वेदश्रमी ।*** लेखक ने वर्षों अनुसन्धान कर यज्ञ के सम्बन्ध में उठने वाले प्रश्नों का समाधान इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है ।

आर्यसमाज विषयक साहित्यिक परिचय : ***डॉ॰ भवानीलाल भारतीय।*** आर्यसमाज के इतिहास, इसके नियम, उपनियम, इसकी परिचयात्मक जानकारी तथा इसके सिद्धान्तों एवं कार्यों से सम्बन्धित ग्रन्थों की परिपूर्ण सूची प्रस्तुत की गयी है ।

वीर तरङ्गिणी : ***आचार्य उदयवीर शास्त्री*** को पाठक प्राय: योग, वेदान्त, सांख्य आदि दर्शनों के प्रकाण्ड पण्डित के रूप में ही जानते हैं । वे कवि और कथाकार भी थे, आलोचक और पुरा-मर्मज्ञ भी यह पता चलता है इस विविधा से ।

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बहुत दिनों बाद प्रकाशित पुस्तकें

१. वैदिक सम्पदा :

लेखक पं० वीरसेन वेदश्रमी । मूल्य : १७५.०० रु०

वेद से मानव जीवन की सब समस्याओं का हल प्राप्त होता है । प्रस्तुत ग्रन्थ में सर्वप्रथम आध्यात्मिक समस्या का उल्लेख है । इसके पश्चात् वेद से वर्तमान समय की सामाजिक समस्या का हल जिन उत्तम आदर्शों से हो सकता है उस का विवेचन किया है । इस में वैदिक पारिवारिक आदर्श, वैदिक गृहस्थवा; के आदर्श आदि प्रकरण हैं । गृह-निर्माण के पश्चात् पशु-पक्षी पालन, कृषि, उद्योग-धन्धे, वन एवं यातायात, औषधि से चिकित्सा, रोग-ज्ञान, शल्य-चिकित्सा, शरीर शास्त्र का ज्ञान आदि का विवेचन है । इसके पश्चात् अर्थशास्त्र : गणितं शास्त्र का विवेचन है । राजनीति शास्त्र में प्रशासनिक, सुरक्षा, सैन्य एवं युद्ध इन तीन के बारे में विचार किया गया है । इन सब के बाद शिक्षा का प्रकरण है । जिस में विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, भाषा विज्ञान, अग्नि व जल विज्ञान का विवेचन है। अन्त में धर्म से जुड़े हुए सभी पहलुओं पर विचार किया गया है ।

२. सन्ध्या-योग ब्रह्म साक्षात्कार :

लेखक पं० जगन्नाथ पथिक । मूल्य : १२५ ०० रु०

मनुष्य बुद्धिप्रधान है, जन्म पाकर उसके अन्त:करण में 'घृणा' (द्वेष) तथा सुख पाने की 'कामना' (राग) स्वभावत: उभर आती है । इन सब से छुटकारा पाने के लिए प्रत्येक मानव छटपटाता दिखता है पर उसे असफलता ही प्राप्त होती है । वेदों में उन दिव्य साधनों का उपदेश है जिन से क्लेश कर्मों को समूल नष्ट करके आनन्द की प्राप्ति हो सकती है । 'वैदिक सन्ध्या' तथा 'अष्टाङ्ग योग-पद्धति' का वर्णन इस ग्रन्थ में है । जिसका सतत-स्वाध्याय करने पर उपासक को 'स्वरूप' का दर्शन और 'पुरुषोत्तम' का साक्षात्कार होकर दिव्य 'उन्मुक्त-जीवन' प्राप्त हो जाता है ।

विशेष छूट

उपरोक्त दोनों ग्रन्थ छपकर तैयार हैं । आप दिनांक २९ फरवरी १९९६ तक इन्हें निम्नलिखित रियायती मूल्य पर प्राप्त कर सकते हैं।

वैदिक सम्पदा : मूल्य १२५.०० रु०

सन्ध्या-योग ब्रह्म साक्षात्कार : मूल्य ९०.०० रु०

पोस्टेज रु० १५ जोड़कर राशि शीघ्र भेजें । पुस्तकें रजिस्ट्री द्वारा भेज दी जायेंगी ।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिण्टर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi